बच्चे और एटलस

प्रकाश कान्त

नक्शे की ही तरह एटलस भी सामाजिक अध्ययन शिक्षण की एक अनिवार्य सहायक सामग्री है। लेकिन देखने में आम तौर पर यही आता है कि सरकारी हो या निजी, हर तरह के स्कूल में इस विषय को पढ़ने-पढ़ाने का काम बिना एटलस के ही निपटा दिया जाता है। जब नक्शों के बिना ही पढ़ना-पढ़ाना हो जाता हो तब एटलस की तो यूँ भी कोई खास ज़रूरत नहीं रह जाती। यही कारण है कि हायर सेकेंडरी स्तर तक के छात्र सामान्यतः एटलस के बारे में नहीं जानते। मेरा अनुभव तो इस मामले में और भी ज़्यादा निराशाजनक और अफसोसनाक रहा है। मैंने निजी स्कूलों में पढ़ा रहे दो युवा शिक्षक साथियों से जब जानना चाहा कि वे अपने पढ़ाने के दौरान एटलस का इस्तेमाल किस तरह करते हैं, तब जवाब में वे एकसाथ चौंके।

“एटलस!”, उन्होंने एक साथ पूछा। उनके चेहरे पर सवाल, जिज्ञासा और कुछ-कुछ हैरानी एकसाथ दिख रहे थे। उनके इस तरह पूछने पर मैं खुद परेशान होने की हद तक हैरान था क्योंकि वे दोनों शिक्षक हाई स्कूल स्तर का भूगोल पढ़ा रहे थे और पढ़ाते हुए उन्हें तीन-चार साल हो गए थे। दोनों ही पोस्ट ग्रेजुएट थे। मुझे अपने सवाल और पूछने के ढंग पर शक होने लगा! कहीं गलत सवाल या सही सवाल गलत ढंग से तो नहीं पूछ लिया। जब पाया कि सवाल पूछने के ढंग में कोई उलझन नहीं है तो बहरहाल, मैंने सवाल दोहराया।

इस बार उन्होंने पूछा तो नहीं लेकिन एक-दूसरे को टटोलने की नज़र से देखा। शायद वे आपस में जानना चाह रहे थे कि मैं क्या पता करना चाहता हूँ!

“क्या आप लोग सच में एटलस के बारे में नहीं जानते?” मैंने अपनी हैरानी ज़ाहिर की! मुझे भरोसा नहीं हो रहा था। लग रहा था कि वे शायद मज़ाक कर रहे हैं।

उन्होंने अस्वीकार में गर्दन हिलाई। मैं ज़बरदस्त ढंग से हैरान।

“एटलस जिसमें नक्शे होते हैं।” मैंने समझाने की कोशिश की!

उनके चेहरे पर अभी भी अस्वीकार लिखा हुआ था।

“आप लोगों को अपनी पढ़ाई के दौरान क्या कभी एटलस नहीं दिखाया गया? कभी उसकी चर्चा नहीं हुई?”

उन्होंने फिर इनकार में गर्दन हिलाई।

"फिर भूगोल-इतिहास किस तरह पढ़ाया गया?"

"जी कुछ ज़रूरी मोटी-मोटी बातें बताकर प्रश्नोत्तर लिखवा दिए जाते थे।"

"आप लोग क्या करते हैं?"

"हम लोग भी कुछ खास-खास बातें बता-समझाकर प्रश्नोत्तर लिखवा देते हैं। समय पर कोर्स खत्म करना होता है।" उन दोनों के चेहरे पर मायूसी थी।

एक अन्य अनुभव

यह मेरे लिए अद्भुत अनुभव था क्योंकि मुझे तो हायर सेकेंडरी के दौरान अपने शिक्षकों द्वारा नक्शे भी दिखाए गए थे और एटलस भी! सेन्धवा हायर सेकेंडरी स्कूल में तो पुरोहित सर ने एक सुव्यवस्थित भूगोल कक्ष ही बना रखा था जिसकी दीवारें मध्य प्रदेश और भारत के ही नहीं बल्कि सभी महाद्वीपों के नक्शों से सजी हुई थीं। नक्शा-स्टैंड पर और भी कई तरह के नक्शे रखे हुए थे जिनका भूगोल की क्लास के दौरान नियमित रूप से उपयोग होता था। नक्शों के अलावा दो-तीन अलग-अलग साइज़ के ग्लोब तथा कुछेक जीवाश्म जैसी चीज़ें भी रखी हुई थीं। परतदार, कायान्तरित और आग्नेय चट्टानों के नमूने भी मौजूद थे। कक्षा में जाते ही एक खास तरह का एहसास होता था। इतना ही नहीं, उन्होंने ज्यामिति की मदद से भारत का नक्शा बनाने की विधियाँ भी विकसित की थीं। नौवीं क्लास में वे सबसे पहले उसी विधि से नक्शा बनवाने का अभ्यास करवाते थे। उनके अलावा इतिहास पढ़ाने वाले सर भी 'विश्व की प्रमुख सभ्यताएँ' जैसे पाठ पढ़ाते समय विश्व के नक्शे का उपयोग करते थे। भारत का इतिहास पढ़ाते समय वे अनिवार्य रूप से भारत के नक्शे का उपयोग करते ही थे और यूरोप का इतिहास पढ़ाते हुए यूरोप के राजनैतिक नक्शे में बहुत सारी ज़रूरी जगह बताते चलते थे।

पुरोहित जी ने एक और अद्भुत काम किया था। स्कूल के मैदान में जहाँ रोज़ प्रार्थना होती थी, वहाँ भारत का एक बहुत बड़ा त्रिआयामी नक्शा बना दिया था। पहाड़, पठार, मैदान, नदियाँ सभी कुछ! उसी नक्शे से पहाड़, पठार, मैदान की संरचनाएँ और अवधारणाएँ समझ में आई थीं। बाद में जब देवास के नारायण विद्या मन्दिर हायर सेकेंडरी स्कूल में आया तब वहाँ तोमर साहब भूगोल पढ़ाते थे। उनसे पढ़ने-पढ़ाने के दौरान नक्शे-एटलस का विस्तार से उपयोग करने के फायदे समझ में आए थे। हायर सेकेंडरी होने तक मेरे समेत पूरी क्लास एटलस और नक्शे की अहमियत अच्छी तरह जान-समझ चुकी थी। बहरहाल, उस वक्त उन दो युवा शिक्षकों को मैं एटलस के बारे में जितना कुछ संक्षिप्त और स्पष्ट ढंग

चित्र: अनन्या सिंह

से बता सकता था, उतना बताने की कोशिश की थी और आग्रह किया था कि वे स्वयं एटलस देखने-दिखाने की पहल करें!

पाठ से जुड़े नक्शे

जब मानकुण्ड-अरलावदा स्कूलों में *एकलव्य* का सामाजिक अध्ययन नवाचार कार्यक्रम शुरू हुआ तब देखा कि इन प्रायोगिक किताबों में काफी संख्या में न सिर्फ नक्शे दिए गए थे जैसे सामाजिक अध्ययन की पुस्तक में सामान्यतः दिए होते हैं बल्कि इन नक्शों को पाठ पढ़ने-पढ़ाने की प्रक्रिया में विभिन्न अनिवार्य गतिविधियों से जोड़ा भी गया था। ऐसा सिर्फ भूगोल में ही नहीं बल्कि इतिहास और आठवीं कक्षा के नागरिकशास्त्र में सरकार से जुड़े पाठ के लिए भी था। ये नक्शे सामाजिक अध्ययन की प्रचलित किताबों में दिए गए नक्शों की तरह तमाम किस्म की जानकारियों से ठस्सम-ठस्स भरे हुए नहीं थे और न ही उनकी तरह अस्पष्ट! इन किताबों में कुछ नक्शों के खाली खाके भी दिए गए थे ताकि पढ़ते समय उनका हाथो-हाथ अभ्यास भी किया जा सके। पाठ के भीतर दिए गए प्रश्नों को भी इसी तरह बनाया गया था। ज़ाहिर है, इससे समझाने में काफी सहूलियत रहती थी। इसके बावजूद मुझे लगता था कि चूँकि वे नक्शे सम्बन्धित कक्षा के पाठ्यक्रम तक ही सीमित हैं इसलिए अतिरिक्त काम के लिए और भी नक्शे चाहिए। एक ही जगह। इस तरह एटलस का विचार आया।

स्कूल में ग्लोब की तरह एक एटलस भी था। मध्य प्रदेश, भारत और सभी महाद्वीपों के प्राकृतिक तथा

राजनैतिक नक्शों वाला एटलस, जिसके शुरू के पन्ने पर कुछ प्राकृतिक संरचनाओं के चित्र थे। पहले मैंने बच्चों के एक समूह को स्वतंत्र रूप से उस एटलस को उलटने-पलटने को दिया। फिर दूसरे समूह को दिया। उसने भी एटलस को देखा, थोड़ी-बहुत आपस में चर्चा की और बन्द कर दिया। अगले दिन कुछ और समूहों के साथ भी वैसा किया। फिर जो उन्होंने देखा-टटोला था, उस पर चर्चा की। मैंने पाया कि बात बनी नहीं। कुछ खास निकलकर नहीं आया। लगा कि कुछ और किया जाना चाहिए।

इसलिए मैंने एटलस के नक्शों को पढ़ाने के दौरान ही पाठ से जोड़ने की कोशिश की। पाठ में उल्लेखित वे जगहें जो किताब के नक्शों में नहीं थीं, उन्हें एटलस के नक्शों में ढुँढवाया। दीवार पर टँगे नक्शे में दी गई चीज़ों को एटलस के नक्शे में देखने को कहा। बात बनती नज़र आई। मैंने पाया कि उन्हीं समूहों के बच्चे अब एटलस को ज़्यादा गौर से देख रहे हैं। और ढूँढ लेने के बाद उनके चेहरों पर एक खास तरह की चमक आ गई है। मुझे दिशा और सूत्र मिल गए थे। समझ गया था कि कक्षा में अगर अधिक-से-अधिक संख्या में

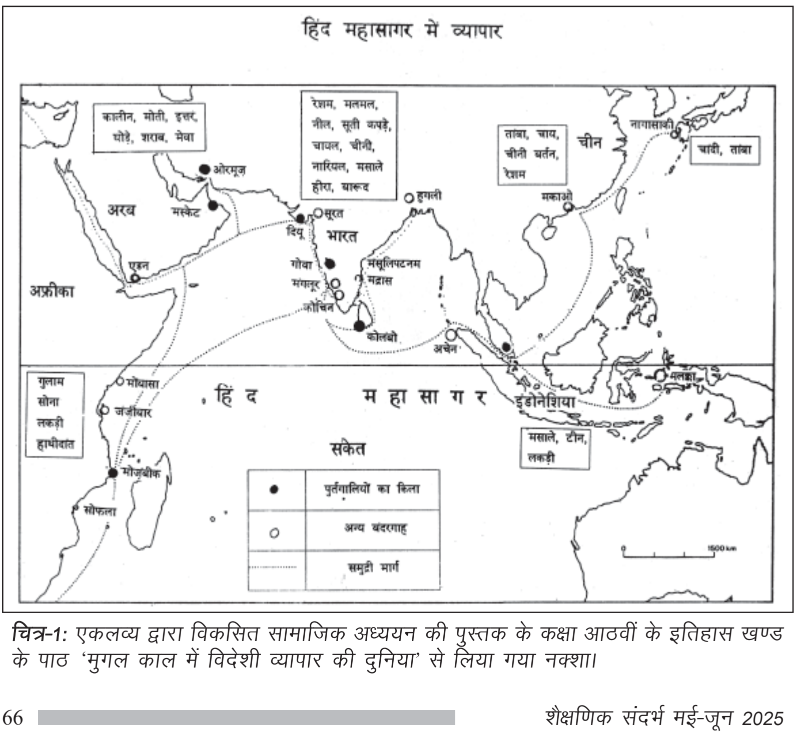

चित्र-1: *एकलव्य द्वारा विकसित सामाजिक अध्ययन की पुस्तक के कक्षा आठवीं के इतिहास खण्ड के पाठ 'मुगल काल में विदेशी व्यापार की दुनिया' से लिया गया नक्शा।*

एटलस हों और उनका उपयोग किया जाए तो सामाजिक अध्ययन को पढ़ाना ज़्यादा बेहतर, रचनात्मक और प्रभावशाली बनाया जा सकता है। पुस्तक में दिए गए नक्शे इस मामले में पूरी तरह मददगार तो थे लेकिन सामान्यत: वे अपने पाठों तक सीमित और सन्दर्भित भी थे।

बिन नक्शों की सीमाएँ

ऐसे में पाठ और किताब के बाहर के देश या महाद्वीपों के बारे में कुछ बताते वक्त दिक्कत होती थी। यदि आठवीं क्लास में उत्तरी अमेरिका पढ़ाते वक्त किसी प्रसंग में अफ्रीका या एशिया या यूरोप के बारे में भी बात करनी हो तो पुस्तक इस मामले में असहाय रहती थी, क्योंकि इन महाद्वीपों से सम्बन्धित पाठ पिछली छठी या सातवीं क्लास में हो चुके थे। ऐसे में समानान्तर रूप से तत्काल उनके बारे में कुछ बताने का कोई ज़रिया नहीं रहता था। बच्चों के पास निजी एटलस होने पर इस समस्या का समाधान किया जा सकता था। मैंने बच्चों से एटलस खरीदवाए। पहले ऐच्छिक तौर पर। उनका समूह बनाकर इस्तेमाल करवाया। ज़ाहिर है, फायदा हुआ।

बेशक, समूह में उपयोग करने में परेशानी थी। समय लगता था। और हर बच्चा ठीक-से या एकजैसा सक्रिय नहीं रह पाता था। फिर मैंने हर बच्चे के लिए एटलस खरीदवाना शुरू कर दिया। सबसे सस्ता और दसवीं तक काम दे सकने वाला एटलस। सभी महाद्वीप और भारत एवं मध्य प्रदेश के दो-दो प्राकृतिक-राजनैतिक नक्शों वाला एटलस। तब वह आठ रुपए में मिलता था। और इतनी राशि बच्चे खर्च कर सकते थे। खरीदने के लिए वे खुद भी उत्साहित थे। खासकर, जब पाठ पढ़ते वक्त उन्हें उसका इस्तेमाल करना आने लगा। बल्कि उन्हें इसमें एक तरह से मज़ा भी आने लगा। हालाँकि, शुरू-शुरू में एकदम आसान भी नहीं रहा। पहले वे महाद्वीप की आकृति की मदद से महाद्वीप पहचानने लगे। साथ में, उसके आसपास के सागर-महासागर। फिर पहाड़, नदियाँ, मैदान। फिर देश, प्रान्त, शहर। इसी तरह से और भी बहुत कुछ। शुरू में यह सब देखने-पहचानने की रफ्तार धीमी रही। लेकिन एक-दूसरे से पहले ढूँढने की कोशिश में रफ्तार बढ़ती चली गई। उनके बीच एक तरह से सबसे पहले ढूँढने की होड़ शुरू हो गई। बाद में तो यह एक तरह के खेल में बदलने लगा। मैंने पाया कि एटलस के आधार पर ऐसी बहुत सारी प्रतियोगितानुमा गतिविधियाँ करवाई जा सकती हैं जिनके ज़रिए सामाजिक अध्ययन की समझ भी विकसित होती हो! प्रश्न-मंच जैसे अनौपचारिक समूह खड़े किए जा सकते हैं। मैं यह कर पाया। इसका एक फायदा यह हुआ कि कक्षा और अध्यापन की एकरसता

चित्र-2: कक्षा आठवीं के नागरिकशास्त्र खण्ड के पाठ 'सरकार' से लिया गया नक्शा।

टूटी और निष्क्रिय या उदासीन रहने वाले छात्र भी सक्रिय हुए।

खुलती दिशाएँ

बाद में, एक और कदम उठाया कि मासिक टेस्ट, तिमाही, छमाही और स्थानीय परीक्षाओं में भी एटलस आधारित प्रश्न शामिल करने लगा। आकार के हिसाब से सबसे बड़े से लेकर सबसे छोटे महाद्वीपों की सूची बनाओ, अटलांटिक महासागर के आसपास के महाद्वीपों के नाम लिखो, भूमध्यसागर के आसपास कौन-कौन से देश हैं, बताओ। बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियों के नाम लिखो।

इस तरह के बहुत सारे और कई तरह के प्रश्न बनते थे। सूचियाँ और तालिकाएँ बनती थीं। दिशाएँ देखी जाती थीं। और लगभग 70-75 फीसदी बच्चे इन प्रश्नों को हल कर लेते थे। बाद में इन प्रश्नों को अनिवार्य प्रश्नों में शामिल किया जाना और ज़्यादा फायदेमन्द रहा।

वैसे एटलस देखने-सीखने की यह प्रक्रिया मैंने एक तरह से परिचित और पास के क्रम से शुरू की। मतलब पहले मध्य प्रदेश, फिर देश। उसके बाद एशिया। और आखिर में दीगर महाद्वीप! वैसे कायदे से तो बिलकुल शुरू में ज़िले के नक्शे के बारे में बताया जाना चाहिए था। लेकिन दिक्कत यह थी कि एटलस में ज़िले के नक्शे दिए नहीं गए थे। वैसे में ज़िले के दीवार नक्शे से ही काम चलाना होता था। बहरहाल, प्रदेश से महाद्वीपों तक की यह यात्रा समझ बनाने के लिहाज़ से काफी सुविधाजनक और कारगर रही।

खैर, आठवीं तक आते-आते यह हुआ कि बच्चे किसी भी महाद्वीप या देश का उल्लेख होने पर उसे खुद ही एटलस में ढूँढने-देखने लगे। मेरे खयाल से आठवीं तक के बच्चे को इतना अभ्यास और जानकारी हो जाना और उसका इस तरह से सक्रिय बन जाना कम नहीं था।

एटलस की छाप

इनमें से जिन बच्चों ने भूगोल या सामाजिक अध्ययन के अन्य विषयों में ग्रेजुएशन किया, उन्हें यह अनुभव और दक्षता काफी काम आई। अभी कुछ साल पहले ऐसे ही दो पूर्व छात्र मिले। वे नज़दीक के शहर हाट पीपल्या से ग्रेजुएशन कर रहे थे। और एक विषय भूगोल ले रखा था। उन्होंने बताया कि अपनी कक्षा में उनका प्रदर्शन सबसे बेहतर रहता है। और विषयों के शिक्षक उनकी तैयारी एवं दक्षता देख-समझकर प्रभावित हैं।

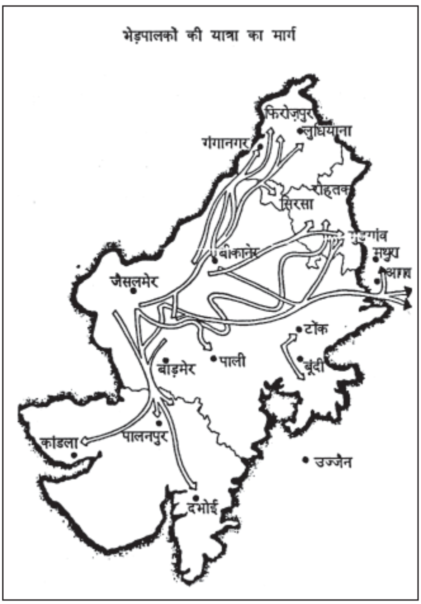

चित्र-3: कक्षा आठवीं के भूगोल खण्ड के पाठ 'राजस्थान - थार का मरुस्थल' से लिया गया नक्शा।

मैं आखिर तक अपनी कक्षा में एटलस को ज़रूरी औज़ार की तरह इस्तेमाल करता रहा। हालत यह हो गई कि बच्चों के पास अपने निजी एटलस न होने पर, मेरे लिए पढ़ा पाना मुश्किल होने लगा। मेरे भीतर यह विश्वास बैठ गया कि मैं तब तक भूगोल नहीं पढ़ा सकता जब तक बच्चे पढ़ते वक्त साथ में अपने-अपने एटलस इस्तेमाल न कर रहे हों। जैसा मैंने बताया था, उन दिनों एक सामान्य एटलस आठ रुपए में आ जाता था। मैं छठी में प्रवेश लेने वाले छात्रों के लिए सत्र के शुरू में ही अन्य पाठ्यपुस्तकों के साथ एटलस खरीदना अनिवार्य कर देता था। आठ रुपए का एटलस उन्हें तीन साल मतलब आठवीं तक तो काम आना ही था। हालाँकि, बाद में मैं देवास से थोकबन्द एटलस खरीदकर उपलब्ध करवाने लगा जो उन्हें और भी सस्ते पड़ते थे।

एटलस के नक्शे और रंग

ये एटलस उपयोगी तो बहुत थे लेकिन इनके साथ दिक्कत भी थी और वह थी, उनके रंग! जहाँ तक पाठ्यपुस्तकों के नक्शों की बात है, आम तौर पर वे रंगीन नहीं होते। इन श्वेत-श्याम नक्शों में पहाड़, पठार, मैदान वगैरह जैसी चीज़ें विभिन्न संकेतों से दिखाई जाती हैं। बेशक, इन संकेतों की अपनी सीमा होती है। लेकिन इनके ज़रिए समझाना एवं

समझ बनाना आसान होता है क्योंकि वे अपने सांकेतिक अर्थों में ज़्यादा स्पष्ट और बोधगम्य होते हैं। सामान्य (सस्ते) एटलस के नक्शे जो कि रंगीन होते हैं, उनके साथ यह बात नहीं होती। खासकर पहाड़, पठार, मैदान जैसी प्राकृतिक संरचनाएँ बताने वाले नक्शों में! नीले रंग से पानी, हरे से मैदान, गहरे कत्थई से पहाड़, पीले-भूरे से पठार वगैरह दिखाए जाते हैं और बच्चे इनके ज़रिए नक्शों में इन चीज़ों को देख-पढ़ भी लेते हैं। लेकिन ज़मीन की अलग-अलग ऊँचाइयों को रंगों की संकेत-तालिका के ज़रिए पढ़ने-जानने में दिक्कत होती है। और उलझन भी! इसकी वजह होती है, रंगों की अस्पष्ट छपाई! खासकर, एक ही रंग की हल्की और गहरी छपाई में। बच्चे आम तौर पर महँगे एटलस खरीद नहीं पाते इसलिए उन्हें सस्ते एटलस से ही काम चलाना पड़ता है जिनमें यह समस्या कमोवश रहती ही है। सामान्यतः ये रंग अस्पष्ट होने के अलावा आपस में गड्ड-मड्ड भी होते हैं।

इसके अलावा ज़मीन की ऊँचाई के बढ़ते जाने को रंगों के जिस महीन फर्क से दिखाया जाता है, उसे समझना बच्चों के लिए काफी मुश्किल रहता है। वे उस महीन अन्तर को पकड़ नहीं पाते। जबकि श्वेत-श्याम रंगों में दी गई संकेत तालिका के संकेत काफी साफ होते हैं। अलग-अलग ऊँचाइयों के वर्ग, उनके ज़रिए बहुत स्पष्ट ढंग से बताए जाते हैं। मसलन, 500 से 1000 मीटर की ऊँचाई को आड़ी रेखाओं से बताया है तो 1000 से 1500 को क्रॉस रेखाओं से! ऐसे ही अन्य पैटर्न। लेकिन एटलस के नक्शों में इन्हें एक ही रंग की अलग-अलग ग्रेडिंग से दिखाया जाता है। ग्रेडिंग या शेड्स से। इसके अलावा रंग सटीक ढंग से सही जगह छपे नहीं होते। इधर-उधर फैले हुए नज़र आते हैं। जैसा पहले कहा, यह समस्या आम तौर पर सस्ते एटलसों के साथ होती है। लेकिन जब आप हर बच्चे के पास उसका निजी एटलस होने का लक्ष्य चुनते हैं और ये बच्चे गाँव के सरकारी स्कूल के सामान्य या निम्न आय वर्ग के होते हैं तब आपके पास सस्ते एटलस का विकल्प ही बचता है; जिसकी मदद से आपका उद्देश्य बुनियादी समझ बनाने का होता है। ऐसे में, आपको रंगों की छपाई की समस्या से निपटने का रास्ता खुद तलाशना पड़ता है। इसके लिए मैंने शुरू में खुद को स्थूल और बहुत साफ-साफ दिखने एवं समझ में आने वाले भू-विभाजन पर फोकस किया। इसके लिए रोल-अप बोर्ड पर बने नक्शों के खाके में चॉक रंगों से इन विभाजनों को प्रदर्शित करने की कोशिश की। पहाड़, पठार, मैदान! यह बहुत साफ और मोटा-मोटा-सा भू-विभाजन था। असल उद्देश्य प्राकृतिक नक्शों को

पढ़ना सीखना था। खासकर रंगों की मदद से। रंगीन नक्शे में धरातल की बनावट पढ़ने में सबसे ज़्यादा मददगार रहा मध्य प्रदेश का नक्शा।

अविभाजित मध्य प्रदेश के नक्शे में धरातल की बनावट में बहुत ज़्यादा भिन्नता नहीं थी। शून्य से 1350 मीटर की ऊँचाई के इस धरातल का अधिकांश हिस्सा शून्य से 600 मीटर के बीच का था जिसकी दो हिस्सों में ग्रेडिंग थी। शून्य से 300 और 300 से 600 मीटर! पहला हिस्सा जो नर्मदा, चम्बल, महानदी वगैरह के आसपास था, गहरे हरे रंग और दूसरा हिस्सा जिसमें मध्य प्रदेश का बहुत बड़ा भाग आता था, हल्के हरे रंग में दिखाया गया था। इसके अलावा महादेव पहाड़ियाँ और मैकल श्रेणियाँ पीले और कत्थई रंग में प्रदर्शित थीं, जो समुद्र की सतह से 600 से 1350 मीटर की ऊँचाई की थीं। 900 से 1350 मीटर ऊँचाई का भू भाग बहुत कम था और कत्थई रंग में दिखाया गया था, वह आसानी-से पहचाना जा सकता था। बच्चों की यह भी समझ बनी कि नदियों के आसपास का इलाका आम तौर पर अपेक्षाकृत सबसे निचला भू-भाग होता है।

ऊँची-नीची मुश्किलें

यहीं एक बात और - नक्शे में बताई गई ज़मीन की ऊँचाई को बच्चे अपने आसपास की ज़मीन की ऊँचाई के सन्दर्भ में देखते थे। उन्हें यह समझने में थोड़ी मुश्किल हुई कि

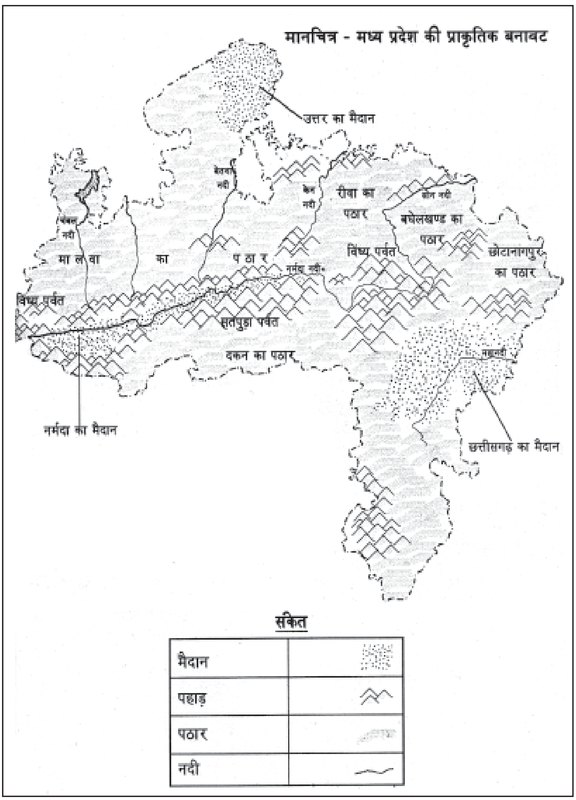

चित्र-4: कक्षा छठवीं के भूगोल खण्ड के पाठ 'मैदान, पहाड़ और पठार' से लिया गया नक्शा।

नक्शों में ज़मीन की जो ऊँचाई दिखाई जाती है, वह समुद्र की सतह से नापी गई ऊँचाई होती है। यहीं उनकी ओर से सवाल आया कि समुद्र की सतह से इतनी अलग-अलग जगहों, खासकर समुद्र से दूर की जगहों की ऊँचाई कैसे नापी गई! इस सवाल का जवाब देना मेरे लिए आसान नहीं रहा था। यूँ भी, समुद्र की सतह से ज़मीन की ऊँचाई नापने का तरीका अपने-आप में काफी जटिल था। उसे जितना सम्भव हो सकता था, उतना आसान करके समझाने का मैंने प्रयास किया था। इसी से मिलता-जुलता मुद्दा था, समुद्र से दूरी और समुद्र की सतह से ऊँचाई का! ये दोनों ही किसी जगह की जलवायु को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक थे। इन दोनों को लेकर बच्चे अक्सर गड़बड़ाते थे।

मध्य प्रदेश के प्राकृतिक नक्शों के ज़रिए रंगों की मदद से धरातल की बनावट पढ़ने-समझने में आसानी हुई। हालाँकि, छठी कक्षा के कोर्स में मध्य प्रदेश तो नहीं था। सिर्फ 'पहाड़, पठार और मैदान' पाठ में मध्य प्रदेश का एक प्राकृतिक नक्शा था। उसे और एटलस में दिए मध्य प्रदेश के प्राकृतिक नक्शे के आधार पर काम करवाने में कई पीरियड लग गए। लेकिन अगला काम इससे आसान हो गया।

वैसे एटलस के रंगीन नक्शों को लेकर बच्चों की शुरू-शुरू में कुछ मौलिक दिक्कतें भी होती हैं। खासकर राजनैतिक और प्राकृतिक नक्शों के सन्दर्भ में। जब उन्हें बता दिया जाता है और वे सीख भी जाते हैं कि प्राकृतिक नक्शों में रंगों के अपने निश्चित अर्थ होते हैं तो वे राजनैतिक नक्शों को भी इसी समझ के साथ पढ़ने की कोशिश करते हैं। जबकि वहाँ रंगों का इसके सिवा कोई मतलब नहीं होता कि वे ज़िले, प्रान्त, देश या महाद्वीपों को एक-दूसरे से अलग-भर बताने का काम करते हैं। रंगीन नक्शों में रंगों की यह दो तरह की भूमिका बच्चों को अक्सर भ्रमित करती है। खासकर, शुरू की कक्षाओं में। बाद में तो वे इस फर्क को समझ लेते हैं।

मैंने अपने स्कूल में बच्चों से एटलस की मदद से नक्शे बनवाना शुरू किया। धीरे-धीरे तीनों क्लास के सभी बच्चों के पास एटलस हो ही चुके थे। पेंसिल, रबर वगैरह उनके कम्पास बॉक्स में थे। इसके अलावा बाज़ार में मिलने वाले चॉक कलर भी उन्हें खरीदवा दिए थे। उन दिनों चॉक कलर यानी क्रेयोन की सस्ती डिब्बी तीन रुपए में मिलती थी जो लगभग हर स्टेशनरी की दुकान पर उपलब्ध थी। इन रंगों का नक्शों के लिए तो उपयोग होना ही था, इसके अलावा चूँकि उन दिनों स्कूलों में *एकलव्य* की बहुत सारी गतिविधियाँ चलती थीं इसलिए उनमें होने वाली चित्र प्रतियोगिता वगैरह में भी ये रंग

काम में आते थे। बाल पत्रिका *चकमक* में बच्चों के बनाए चित्रों के लिए कई पन्ने आरक्षित होते थे जिनमें उस दौर के कई बच्चों के चित्रों को जगह मिली थी। मेरे स्कूल के बच्चों के चित्रों को भी। जैसा कि पहले भी ज़िक्र किया, मेरे स्कूल के इकबाल का बनाया मोर का चित्र तो *चकमक* के बीच के दो पेज पर छपा था और काफी चर्चित भी हुआ था।

बहरहाल, ये चॉक कलर बच्चों से रंग भरवाने के लिए मुफीद थे। इनके बॉक्स पतले गत्ते के होते थे और जल्दी टूट जाते थे। बच्चे उन्हें अपने कम्पास बॉक्स में या बाद में बाज़ार में मिलने लगे प्लास्टिक के डिब्बों में रखने लगे।

रंगीन नवाचार

ये चीज़ें सामाजिक अध्ययन पढ़ाने में काफी मददगार रहीं। किताबों में दिए नक्शों के लिए भी और उनके अलावा दूसरे नक्शों के लिए भी। किताबों के बाहर के नक्शों को उन्होंने ट्रेस कर उनमें समुद्र, पहाड़, नदी वगैरह बनाकर, उनमें रंग भरा। इसके अलावा किताब में दिए गए श्वेत-श्याम नक्शों में भी रंग भरे। यहाँ तक कि इतिहास के पाठों में जो अलग-अलग तरह के नक्शे दिए गए थे, उन्हें भी रंगीन बना दिया। ऐसा करते वक्त नक्शे में रंग भरने के जो मानक हैं, उनका भी ध्यान रखा। मतलब कि समुद्र, झील या नदी को नीले से ही रंगा – लाल, हरे, पीले से नहीं, और मैदान हरे से ही बताया, गुलाबी या कत्थई से नहीं! यह उनका अपनी तरह का नवाचार था। चौंकाने वाला काम जिसके बारे में न मैंने सोचा था और न उस तरह की कोई कल्पना ही की थी। बच्चे होने की यही फितरत है। वे आपका अनसोचा ऐसा भी कुछ कर डालते हैं जो नया होने के साथ-साथ आपको चौंकाने वाला भी होता है। बाजवक्त, आप जहाँ तक का सोच पाते हैं, बच्चे उसके आगे का सोचते और कर डालते हैं।

प्रकाश कान्त: हिन्दी से एम.ए. और रांगेय राघव के उपन्यासों पर पीएच.डी. की है। शीर्ष पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं आलेख प्रकाशित। चार उपन्यास – *अब और नहीं, मक्तल, अधूरे सूर्यों के सत्य, ये दाग-दाग उजाला*; कार्ल मार्क्स के जीवन एवं विचारों पर एक पुस्तक; तीन कहानी संग्रह – *शहर की आखिरी चिड़िया, टोकनी भर दुनिया, अपने हिस्से का आकाश,* संस्मरण – *एक शहर देवास, कवि नईम और मैं,* और फिल्म पर एक पुस्तक – *हिंदी सिनेमा: सार्थकता की तलाश* प्रकाशित हो चुकी हैं। लगभग 30 वर्षों तक ग्रामीण शालाओं में अध्यापन।

चित्र: अनन्या सिंह: वर्तमान में एनआईडी, असम में कम्युनिकेशन डिज़ाइन की पढ़ाई कर रही हैं।

यह लेख *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित पुस्तक *सामाजिक अध्ययन नवाचार* से साभार।